विचार बिन्दु

शिक्षा का महान उद्देश्य ज्ञान नहीं, कर्म है। –हर्बर्ट स्पेन्सर

राजस्थान शिक्षा सशक्तिकरण और विकास की नई राह

शिक्षा किसी भी समाज के विकास का आधार होती है और राजस्थान जैसे सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक राज्य में शिक्षा का सशक्तीकरण पहले से अधिक आवश्यक बन गया है। बदलती वैश्विक और राष्ट्रीय परिस्थिति, टेक्नोलॉजी का तेजी से प्रसार, तथा राज्य की भौगोलिक व सामाजिक विविधता ने यह संकेत दिया है कि पारंपरिक शिक्षा मॉडल अब पर्याप्त नहीं रह गया। इसलिए राजस्थान को शिक्षा के क्षेत्र में न केवल पहुंच और गुणवत्ता दोनों बढ़ानी होंगी बल्कि ऐसे समन्वित प्रयास करने होंगे जो स्थानीय संदर्भों के अनुरूप हों और युवाओं को आत्मनिर्भर बनाकर क्षेत्रीय विकास में सक्रिय भागीदार बना सकें।

राजस्थान की शिक्षा व्यवस्था ने पिछले दो दशकों में कई कीर्तिमान बनाए हैं। साक्षरता दर में लगातार वृद्धि, बालिका शिक्षा के लिए विशेष योजनाएँ, स्कूलों में आधारभूत सुविधाएँ पहुँचाने के प्रयास और डिजिटल शिक्षा की ओर शुरुआती कदम ये सभी सकारात्मक संकेत हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के साथ तालमेल रखते हुए राज्य सरकार ने मध्यम और उच्च शिक्षा के विस्तार पर भी ध्यान दिया है। राजकीय पहल और कार्यक्रमों ने शिक्षा के पारिस्थितिक ताने-बाने में सुधार लाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन उपलब्धियों में प्रमुख हैं: शिक्षा अवसंरचना का विस्तार, बालिकाओं की शिक्षा बढ़ाने के लिए लक्षित योजनाएँ, शिक्षक भर्ती और प्रशिक्षण में सुधार, डिजिटल शिक्षा कार्यक्रमों की शुरुआत और कौशल विकास के लिए विशेष पहलें। परंतु इन उपलब्धियों के साथ कई जटिल समस्याएँ भी जुड़ी हुई हैं जो यदि समय रहते संभाली नहीं गईं तो दीर्घकालिक विकास पर बाधा पड़ सकती है। प्राथमिक चुनौतियों में गुणवत्ताहीन शिक्षण, ग्रामीण और शहरी के बीच असमानता, शिक्षक क्षमता और प्रेरणा, इंफ्रास्ट्रक्चर की कमी, डिजिटल विभाजन, तथा व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा का तालमेल प्रमुख हैं। राज्य के अनेक क्षेत्रों में स्कूल पहुँच और नामांकन की समस्या कम हुई है, परन्तु उच्च शिक्षा और कौशल विकास के अवसर अभी भी पर्याप्त नहीं पहुँच पाते। खासकर पिछड़े जिलों और आदिवासी/वंचित समुदायों में बच्चे शिक्षा से जल्दी ही अलग हो जाते हैं या शिक्षा अपर्याप्त रहने के कारण रोजगार योग्य कौशल नहीं सीख पाते।

शिक्षा सशक्तीकरण का अर्थ केवल पढ़ाई-लिखाई नहीं है यह व्यापक रूप से व्यक्तियों और समुदायों को निर्णय लेने, आत्मनिर्भर बनने और समाज में सक्रिय भागीदारी करने के लिए सशक्त बनाना है। इसलिए नीति और कार्यक्रमों का फोकस तीन समांतर धुरी पर होना चाहिए: पहुँच, गुणवत्ता और प्रासंगिकता।

राजस्थान सरकार की प्रमुख उपलब्धियाँ शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय रही हैं और वे राज्य के शिक्षा ढांचे को सशक्त करने में सहायक सिद्ध हुई हैं। इनमें से कुछ मुख्य उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं सरकार ने छात्र-छात्राओं के लिए मुफ्त और अनुदानित शिक्षा के कार्यक्रमों को व्यापक रूप में लागू किया है, साथ ही छात्रवृत्ति योजनाओं का विस्तार कर आर्थिक बाधाओं को कम किया गया है। सरकार द्वारा स्कूलों में शौचालय, पीने का पानी, बिजली और स्वच्छता जैसी आधारभूत सुविधाओं के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया गया है, जिससे नामांकन और उपस्थिति दर में सुधार देखने को मिला है। बालिका शिक्षा को बढ़ाने के लिए 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' व समतुल्य राज्य-स्तरीय योजनाओं के साथ स्थानीय अनुदानों द्वारा लड़कियों के लिए आर्थिक प्रोत्साहन और पोषण योजनाएँ संचालित की गई हैं। डिजिटल शिक्षा के लिए राज्य-संचालित पहलें जैसे स्मार्ट क्लासरूम, ई-लर्निंग पोर्टल्स और शिक्षक प्रशिक्षण प्रोग्रामों की शुरुआत से शिक्षण पेद्धतियों में आधुनिकीकरण हुआ है। उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा के विस्तार के लिए नए कॉलेजों, विश्वविद्यालयों और पॉलिटेक्निक संस्थाओं की स्थापना तथा रोज़गारोन्मुख प्रशिक्षण केंद्रों का सृजन भी सरकार की सकारात्मक पहलें रही हैं। साथ ही स्कूल-स्तरीय प्रबंधन सुधारने के लिए स्कूल समितियों का सशक्तिकरण और निगरानी तंत्र में डिजिटलीकरण का कार्य भी बढ़ाया गया है।

शिक्षक केवल सूचना देने वाले नहीं बल्कि मार्गदर्शक, प्रेरक और स्किल डेवलपर होने चाहिए। इसके लिए नियमित और अनुकूल प्रशिक्षण, सहायक शिक्षण संसाधन, डिजिटल शिक्षण उपकरणों में प्रवीणता, तथा स्थानिक भाषाओं व संस्कृति का समावेश आवश्यक है। राज्यों के कई अच्छे मॉडल में शिक्षकों को स्थानीय संदर्भ में पाठ्य निर्माण व अनुकूलन का अधिकार देकर उनकी रचनात्मकता को प्रोत्साहित किया गया है। इसी तरह शिक्षकों के मूल्यांकन में केवल परीक्षाफल नहीं बल्कि विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास, संवाद कौशल और परियोजना-आधारित शिक्षण के मानदंडों को जोड़ना चाहिए। राजस्थान में हाल की शिक्षक प्रशिक्षण पहलें और ऑनलाइन टी-ट्रेनिंग मॉड्यूल इस दिशा में काम कर रही हैं, और इन्हें और व्यापक कराना होगा।

वित्तीय निवेश और संसाधनों का पुनर्संतुलन आवश्यक है। केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर शिक्षा पर खर्च में वृद्धि करनी होगी, पर साथ ही संसाधनों का लक्षित वितरण भी चाहिए ताकि वंचित जिलों को प्राथमिकता मिल सके। निजी क्षेत्र और सन्निकट समुदायों के सहयोग से सार्वजनिक-निजी भागीदारी मॉडल लागू किए जा सकते हैं- विशेषकर प्रशिक्षण, डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर और संस्थागत क्षमता निर्माण में।

डिजिटल शिक्षा और टेक्नोलॉजी का उचित उपयोग राजस्थान के लिए एक बड़ा अवसर हो सकता है, पर इसके साथ डिजिटल विभाजन को पाटना होगा। सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट और उपकरणों की कमी, भाषा-समस्याएँ और डिजिटल साक्षरता न होने के कारण कई युवा शिक्षा की आधुनिक विधियों से वंचित रहते हैं। इसलिए, स्कूलों में कम लागत वाले स्मार्ट क्लासरूम, ऑफलाइन डिजिटल कंटेंट, मोबाइल-आधारित लर्निंग और स्थानीय भाषा में शैक्षिक सामग्री का निर्माण आवश्यक है। साथ ही, सामुदायिक इंटरनेट केन्द्र और डिजिटल ट्रेनिंग कैम्प चलाकर माता-पिता व छात्र दोनों की साक्षरता बढ़ानी चाहिए। राज्य सरकार द्वारा चलाई जा रही कुछ डिजिटल पहलों ने ग्रामीण क्षेत्रों में पहुँच बढ़ाई है; अब इन्हें स्थानीय भाषा सामग्री और ऑफलाइन एक्सेस के साथ मजबूत करना होगा।

कौशल शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण को मुख्यधारा में लाना आज के युग में अनिवार्य है। राजस्थान की अर्थव्यवस्था में कृषि, छोटे और मध्यम उद्योग, हस्तशिल्प, पर्यटन और सेवा क्षेत्र प्रमुख हैं। अत: शिक्षा प्रणालियाँ ऐसी होनी चाहिए जो युवाओं में उद्यमिता, तकनीकी कौशल, डिज़ाइन सोच और बाजार के अनुरूप विशेषज्ञता विकसित करें। इस दिशा में राज्य सरकार ने कौशल विकास संगठनों और प्राइवेट पार्टनरशिप के माध्यम से प्रशिक्षण योजनाएँ शुरू की हैं, जिनमें स्थानीय हूनर और हस्तशिल्प कौशल को भी शामिल किया जा रहा है।

समावेशी शिक्षा के लिए विशेष पहल आवश्यक हैं ताकि हर बच्चा लिंग, आर्थिक पृष्ठभूमि, सामाजिक पहचान, शारीरिक अक्षमता या भाषा के कारण-शिक्षा के बराबर अवसर पा सके। बालिका शिक्षा में सुधार के लिए जनसमुदायिक मार्गदर्शक, छात्रवृत्तियाँ, परिवहन सुविधाएँ और स्कूल वातावरण में सुरक्षा सुनिश्चित करना होगा। आने वाली पीढ़ियों के लिए मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक समर्थन, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए समायोजन और बहुभाषी शिक्षा पद्धितयाँ अपनानी चाहिए। राजस्थान सरकार ने विशेष बच्चों के लिए समायोजन, समावेशी कक्षाएँ और आवश्यकता अनुसार सहायता उपकरण उपलब्ध कराने की नीतियाँ लागू की हैं; इन्हें और मजबूत कर के दूरदराज़ इलाकों तक पहुँचाया जाना चाहिए।

शिक्षा नीति का सफल क्रियान्वयन बड़े पैमाने पर स्थानीय-स्तर पर योजना और निगरानी पर निर्भर करता है। ग्राम पंचायतों और नगर निकायों के साथ समन्वय कर योजनाओं को जमीन पर उतारने के लिए सक्षम लोक सेवकों और स्थानीय शिक्षा अधिकारियों को प्रशिक्षण देना चाहिए। डाटा-संचालित निर्णय लेने की आवश्यकता है। स्कूलों के प्रदर्शन, नामांकन-बनाम उपस्थिति, ड्रॉपआउट रेट, और छात्र-प्रगति के ठोस आँकड़े सुनिश्चित करने होंगे ताकि संसाधन सही जगह पर और सही समय पर खर्च हों। राज्य द्वारा डिजिटल निगरानी उपकरण और शिक्षा प्रबंधन सूचना प्रणाली के उपयोग ने पारदर्शिता बढ़ाई है; अब इन प्रणालियों को और अधिक स्थानीय-आधारित डेटा के साथ जोड़ा जाना चाहिए ताकि त्वरित हस्तक्षेप संभव हो।

राजस्थान की सांस्कृतिक-ऐतिहासिक विरासत को शिक्षा का हिस्सा बनाना राज्य की विशेष पहचान को बनाए रखते हुए बच्चों में स्वाभिमान और रचनात्मकता को प्रोत्साहित करेगा। लोककथाएँ, लोकनृत्य, हस्तशिल्प और भौगोलिक ज्ञान को पाठ्यक्रमों में शामिल करने से न सिर्फ बच्चों का जुड़ाव बढ़ेगा बल्कि स्थानीय उद्योगों को भी नई श्रमशक्ति व नवाचार मिलेंगे। कला और संस्कृति के साथ विज्ञान, गणित और भाषा की एकीकृत शिक्षा युवा पीढ़ी को समग्र दृष्टिकोण देगी। राज्य सरकार द्वारा सांस्कृतिक शिक्षा और हस्तशिल्प प्रशिक्षण के एकीकृत कार्यक्रमों के माध्यम से स्थानीय शिल्पों को संरक्षण और संवृद्धि मिली है; इन पहलों को स्कूली पाठ्यक्रमों के साथ और जोड़ा जा सकता है।

वित्तीय निवेश और संसाधनों का पुनर्संतुलन आवश्यक है। केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर शिक्षा पर खर्च में वृद्धि करनी होगी, पर साथ ही संसाधनों का लक्षित वितरण भी चाहिए ताकि वंचित जिलों को प्राथमिकता मिल सके। निजी क्षेत्र और सन्निकट समुदायों के सहयोग से सार्वजनिक-निजी भागीदारी मॉडल लागू किए जा सकते हैं-विशेषकर प्रशिक्षण, डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर और संस्थागत क्षमता निर्माण में। फंडिंग के साथ-साथ वित्तीय पारदर्शिता और लक्ष्य-आधारित अनुदान प्रावधान भी अनिवार्य हैं। राजस्थान सरकार की कुछ वित्तीय पहलें और स्कीम्स ने लक्षित जिलों में शिक्षा निवेश बढ़ाने में मदद की है; आगे इन्हें दीर्घकालिक और परिणाम-उन्मुख करना होगा।

शिक्षा सशक्तीकरण का अर्थ दीर्घकालिक सोच, सामूहिक प्रतिबद्धता और निरंतर प्रयोग है। राजस्थान को चाहिए कि वह अपनी नीतियों में फ्लेक्सिबल और अनुकूलनशील रणनीतियाँ अपनाए जो राज्य के विविध जिलों के अनुसार अनुकूलित की जाएँ। शिक्षक, अभिभावक, समुदाय, स्थानीय उद्योग और सरकार सबका संयुक्त प्रयास ही इस परिवर्तन को स्थायी बना सकता है।

–अतिथि संपादक,
अविनाश जोशी,
वरिष्ठ पत्रकार एवं कॉरपोरेट सलाहकार

पारिवारिक रिश्तों में बढ़ता तनाव – कारण व निवारण

राजेन्द्र भाणावत

आजकल हम नियमित रूप से यह पढ़ते हैं कि कैसे परिवारों के सदस्यों में तनाव बढ़ रहा है। जो इस तनाव को नहीं सहन कर पाते हैं, वे मानसिक अवसाद की स्थिति में पहुंच जाते हैं जिसकी परिणति कई बार आत्महत्या के रूप में होती है। तनाव के कारण कई बार व्यक्ति अपने ही परिजनों के प्रति घृणा से भर जाता है और वह उनकी हत्या तक करने से नहीं चूकता। हम प्रतिदिन देखते हैं कि कैसे पति पत्नी की हत्या कर रहा है, कोई अपनी माँ को इसलिए मार रहा है कि उसे, उसके स्थान पर नौकरी मिल जाय। पत्नी, अपने प्रेमी के साथ मिलकर पति को मार रही है। कभी परेशान होकर, पत्नी अपने बच्चों के साथ आत्महत्या कर रही है। संयुक्त परिवार तो बहुत पहले ही पीछे छूट चुके हैं और जो कुछ थोड़े बहुत सदस्य परिवार में बचे हैं, वे भी बहुत तनाव में रहने लगे हैं। इसके कारण कुछ सालों पहले तक पारस्परिक सहयोग, समरसता, सरसता, सामंजस्य, सहिष्णुता, का जो वातावरण परिवारों में सामान्य रूप से दिखाई देता था, वह अब दुर्लभ हो गया है। बढ़ते तनाव के कई कारण हैं, जिनका विश्लेषण और उसे दूर करने के उपाय खोजने का हम प्रयास करेंगे।

परिवारों में बढ़ता तनाव आधुनिक जीवन शैली की एक गंभीर समस्या बन चुका है। इसके प्रमुख कारण व्यक्ति का आत्म केंद्रित होना, संवाद की कमी, जीवन शैली और आर्थिक समस्याएं माने जा सकते हैं। परिवार, किसी भी व्यक्ति के लिए मानसिक शक्ति और भावनात्मक ताकत का एक प्रमुख आधार होता है। जब भी व्यक्ति परेशान होता है तो परिवार के सदस्य उसके लिए सबसे बढ़ा सहारा बनते आए हैं। जब यह आधार ही दरकने लगता है तो पूरे परिवार का संतुलन बिगड़ जाता है। जब परिवार के सदस्यों के बीच में दूरी बढ़ती है तो छोटी-छोटी बातें भी बढ़े विवाद का रूप ले लेती हैं।

पारिवारिक तनाव के कारणों को निम्न श्रेणियों में रखा सकता है :–

परस्पर संवाद की कमी:– तकनीक और सोशल मीडिया के तीव्र विस्तार के कारण आजकल परिवार के सदस्य एक छत के नीचे रहते हुए भी आपस में एक दूसरे से बात करने का समय नहीं निकाल पाते। यदि आप किसी परिवार में मिलने भी जाएं तो सभी सदस्य अपने-अपने मोबाइल देखने में अधिक व्यस्त रहते हैं। हालत तो यह हो गई है कि पति-पत्नी एक कमरे में रहते हुए भी जन्मदिन या वैवाहिक वर्षगांठ पर एक दूसरे को व्हाट्सएप या फेसबुक पर शुभकामना संदेश देते हैं। कितनी विडंबना है कि जो 'फेस टू फेस' हैं, वे भी यह काम 'फेसबुक' के माध्यम से कर रहे हैं।

बढ़ती महंगाई और पैसे की तंगी परिवार के सदस्यों में चिड़चिड़ापन उत्पन्न कर देती है। जब लोग अपने व्यवसाय से संतुष्ट नहीं होते हैं या अपनीर नौकरी में प्रसन्न नहीं रहते हैं तो वे अपने कार्य स्थल का चिढ़चिढ़ापन घर में लेकर आते हैं और वहां भी उनका व्यवहार परिवार के अन्य सदस्यों के साथ वैसा ही हो जाता है। स्वाभाविक है, ऐसे व्यवहार का उत्तर भी चिढ़चिढ़े व्यवहार से ही मिलेगा। स्थिति यह बनती है कि कुछ दिनों में परिवार के सदस्य आपस में बात करना ही बंद कर देते हैं और संवादहीनता की स्थिति बन जाती है।

अत्यधिक अपेक्षाएं:– रिश्तों में कड़वाहट तब अधिक आती है जब हम अपने परिवार के सदस्यों से बहुत अधिक अपेक्षा रखते हैं और वे पूरी नहीं हो पातीं। अत्यधिक अपेक्षाएं ही समस्याओं की जड़ होती हैं चाहे वे पिता की पुत्र से हों, पुत्र की पिता से, पति की पत्नी से अथवा पत्नी की पति से, सास की बहू से या बहू की सास से हो। कुछ अपेक्षा होना तो स्वाभाविक है किंतु जब ये सामान्य से अधिक हो जाती हैं तो ये असंतोष का कारण बनती हैं।

एक दूसरे के लिए समय की कमी:– जब संयुक्त परिवारों का चलन था तो घर में कोई ,हमेशा एक दूसरे से बात करने के लिए उपलब्ध रहता था। आज परिवार में कुल तीन-चार ही सदस्य होते हैं और वे भी जब मोबाइल पर व्यस्त हो जाते हैं, तो एक-दूसरे के लिए समय कतई नहीं बचता। यह अनिवार्य है कि परिवार के सदस्य एक-दूसरे के साथ 'क्वालिटी टाइम' बिताएं। इसकी शुरुआत एक साथ बैठकर, खाना खाने के साथ की जा सकती है। इससे कई बार समस्याओं को बढ़ा होने से बचा जा सकता है और गलतफहमी भी पैदा नहीं होती है।

काम और निजी जीवन में असंतुलन:– प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में आगे बढ़ना चाहता है और उसके लिए अधिकाधिक समय काम में बिताता है। इस अंधी दौड़ में वे यह भूल जाते हैं कि परिवार के प्रति भी उनकी जिम्मेदारियां हैं। पूरा समय घर से बाहर बिता कर वे अधिक पैसा भले ही कमा लें, किंतु यदि घर वालों से बात करने का समय भी न निकाल पाएं तो फिर वह पैसा किस काम का? काम और परिवार के बीच में संतुलन बनाना एक कला है। जिसने इसे सीख लिया, उसके जीवन में तनाव स्वत: कम हो जाता है।

पीढ़ीगत वैचारिक अंतर:– पीढ़ियों का अंतर बहुत बढ़ी समस्या है। 40-50-60 वर्ष के लोग 13 से 20 वर्ष के किशोरों, युवाओं की मानसिकता को समझने में नितांत असफल हैं। हाल ही में दिल्ली में जेन -ज़ी के आंदोलन के दौरान देखा गया कि बढ़ी आयु के लोग उनकी भाषा, व्यवहार आदि को समझने में असफल रहे। यही स्थिति घरों में भी होती है। युवा अधिक महत्वाकांक्षी भी हो रहे हैं। उनके रहन-सहन, खाने-पीने और भाषा में बड़ा बदलाव हुआ है। उनके साथ व्यवहार करते समय यदि उनकी आयु को ध्यान में रखते हुए उनकी बात को समझा जाए तो शायद उनके प्रति व्यवहार अधिक बेहतर हो सकता है और अनावश्यक विवाद बचा जा सकता है। जब युवा वर्ग के साथ में मित्रता पूर्ण व्यवहार होगा तो वे भी बड़ों के साथ बात करना पसंद करेंगे। जितना संवाद नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के लोगों में होगा, उतना ही पारिवारिक तनाव को कम करने में सहायता मिलेगी।

सोशल मीडिया का प्रभाव:– पारिवारिक रिश्तों में बढ़ती दूरियों और तनाव का प्रमुख कारण सोशल मीडिया का न केवल तीव्र गति से विस्तार होना अपितु हमारे जीवन पर हावी होना है। आज शायद ही कोई ऐसा युवा होगा जो फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर आदि पर नहीं हो। इन सब पर अधिकांश समय निरर्थक बातों में बीतता है। परिणामस्वरूप, आपस में समय बिताने और बात करने का कोई समय ही नहीं मिलता। सोशल मीडिया की सामग्री पर कोई प्रभावी नियंत्रण संभव नहीं है। इसका सर्वाधिक कुप्रभाव किशोर और युवा वर्ग पर हो रहा है। समाज में बढ़ती पारिवारिक हिंसा और यौनिक उत्पीड़न तथा साइबर फ्रॉड के पीछे भी सोशल मीडिया की बहुत बढ़ी भूमिका है। सोशल मीडिया को बढ़ने से रोका तो नहीं जा सकता, किंतु इसके कुप्रभावों से केवल अच्छे संस्कारों से ही बचा जा सकता है। इसकी शुरुआत बचपन से ही करनी होगी।

अहम्, किसी भी रिश्ते को बिगाड़ने के लिए बहुत है। इस बारे में अनेकांत का सिद्धांत बड़ा उपयोगी हो सकता है। हम सामान्यत: अपनी बात पर अड़े रहते हैं और दूसरे की बात को सुनने तक को तैयार नहीं होते हैं। यदि हम अपने संवाद में 'मैं ही सही हूं' के स्थान पर "दूसरा भी सही हो सकता है" को ले आएं तो बहुत सारी समस्याएं कम की जा सकती हैं। जहां तक तनाव के निवारण का प्रश्न है ,परिवार को वही सब बातें कम करनी होंगी जिनके कारण तनाव बढ़ता है। एक-दूसरे की बात को ध्यानपूर्वक सुनना "'active listening", परिवार के साथ बिना मोबाइल के क्वालिटी टाइम बिताना, अपनी गलती स्वीकारना, सॉरी कहना और अत्यधिक अपेक्षाओं से बचना पारिवारिक रिश्तों को तनाव रहित बनाने की गारंटी है।

–राजेन्द्र भाणावत,
(पूर्व आई.ए.एस. अधिकारी)

'माँ-बेटी' कार्यक्रमों के बीच छूटते अन्य पारिवारिक रिश्ते

प्रोफेसर अशोक कुमार

वर्तमान में भारत के विभिन्न राज्यों में शैक्षिक और सामाजिक स्तर पर माँ-बेटी सम्मेलन या माँ-बेटी मेलों का आयोजन किया जा रहा है। माँ-बेटी मेले जैसे आयोजनों की बाढ़ सी आई है। लड़कियों की सुरक्षा, उनके स्वास्थ्य, स्वच्छता और उनके प्रति समाज की संवेदनशीलता को बढ़ाने के दृष्टिकोण से ये कार्यक्रम निस्संदेह सराहनीय और समय की माँग हैं। बढ़ते सामाजिक अपराधों और डिजिटल भटकाव के बीच माँ और बेटी के बीच की संवादहीनता को दूर करना एक सुरक्षित समाज की पहली सीढ़ी है।

परंतु, इस सिक्के का एक दूसरा पहलू भी है। जब हम सामाजिक स्तर पर केवल एक ही रिश्ते (माँ-बेटी) को केंद्र में रखकर नीतियां और कार्यक्रम बनाते हैं, तो अनजाने में ही सही, परिवार के अन्य महत्वपूर्ण और संवेदनशील हिस्से इस विमर्श से छूट जाते हैं। आज का यक्ष प्रश्न यही है कि क्या समाज के बाकी रिश्ते इतने कुशल और सुदृढ़ हैं कि उन्हें किसी विशेष ध्यान या संवाद सत्र की आवश्यकता नहीं है?

वास्तविकता यह है कि आज आधुनिकता, व्यावसायिकता और तकनीक के प्रभाव में पूरा भारतीय पारिवारिक ढांचा बिखर रहा है। इस माँ-बेटी केंद्रित विमर्श के बीच जो अन्य रिश्ते हाशिए पर छूट रहे हैं, उन पर गंभीरता से विचार करना आवश्यक है इन कार्यक्रमों का मूल उद्देश्य अत्यंत पवित्र और सामयिक है-बढ़ते सामाजिक अपराधों के बीच माँ और बेटी के बीच के कम्युनिकेशन गैप (संवादहीनता) को कम करना, ताकि किशोरियाँ अपनी शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक समस्याओं को बिना किसी झिझक के अपनी माँ से साझा कर सकें। साथ ही, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ जैसे राष्ट्रीय संकल्पों को जमीनी स्तर पर मजबूती देना भी इसका एक लक्ष्य है।

परंतु, इस सराहनीय पहल के समानांतर एक बड़ा और यक्ष प्रश्न - क्या समाज के अन्य पारिवारिक संबंध बिना किसी अवरोध या कुशलता के चल रहे हैं? क्या आज माँ-बेटा, पिता-पुत्री या पिता-बेटे के बीच विशेष संवाद कार्यक्रमों की आवश्यकता नहीं है? वास्तविकता यह है कि वैश्वीकरण, तकनीकी अतिशयोक्ति (स्मार्टफोन और सोशल मीडिया की लत) और व्यावसायिक अंधी दौड़ ने पूरे भारतीय पारिवारिक ताने-बाने को भीतर से हिलाकर रख दिया है। आइए, इन अन्य महत्वपूर्ण रिश्तों के अंतर्विरोधों और उनकी आवश्यकताओं को समझने का प्रयास करते हैं:– अक्सर भारतीय परिवारों में पिता को एक अनुशासक या कमाऊ सदस्य के रूप में ही सीमित कर दिया जाता है। इस दूरी के कारण बेटियाँ अपने पिता से खुलकर बात नहीं कर पातीं।

आवश्यकता क्यों है?: मनोविज्ञानी मानते हैं कि एक बेटी के जीवन में पुरुष के प्रति पहला दृष्टिकोण उसके पिता के व्यवहार से तय होता है। यदि पिता-पुत्री संवाद कार्यक्रम हों, तो पिताओं को यह सिखाया जा सकता है कि वे अपनी बेटियों को केवल लाड़-प्यार ही न दें, बल्कि उनके करियर की आकांक्षाओं को समझें और उन्हें जीवन में साहसिक निर्णय लेने का आत्मविश्वास दें।

संवेदनशीलता और लैंगिक समानता की पहली पाठशाला! आज समाज में महिलाओं के खिलाफ बढ़ते अपराधों को रोकने के लिए केवल बेटियों को सुरक्षित और सचेत करना काफी नहीं है, बल्कि बेटों को संवेदनशील बनाना सबसे पहली शर्त है। आवश्यकता क्यों है?: एक बेटा स्त्री का सम्मान करना सबसे पहले अपनी माँ को देखकर सीखता है। आज के डिजिटल युग में लड़के अक्सर अश्लीलता, आक्रामकता या टॉक्सिक मस्कुलिनिटी (जहरीली पौरुष ग्रंथि) का शिकार हो रहे हैं। माँ-बेटा कार्यक्रमों के माध्यम से माताओं को यह प्रेरित किया जा सकता है कि वे बेटों को बचपन से ही घर के कामों में शामिल करें, रोने या भावनाएं व्यक्त करने पर लड़कियों की तरह मत रोओ कहना बंद करें और उन्हें विपरीत लिंग के प्रति सम्मान सिखाएं। शायद आधुनिक भारतीय समाज में सबसे रूखा और संवादहीन रिश्ता पिता और बेटे का होता जा रहा है। जैसे-जैसे बेटा बड़ा होता है, पिता और उसके बीच एक अनकहा मौन पसर जाता है। दोनों एक ही छत के नीचे रहते हुए भी अजनबी बने रहते हैं।

आवश्यकता क्यों है?: इस खालीपन के कारण युवा लड़के अक्सर गलत संगति, नशे की लत, या कोचिंग कल्चर और करियर के दबाव में आकर अवसाद (डिप्रेशन) का शिकार हो रहे हैं। पिता-पुत्र समागमों के माध्यम से पिता को एक सख्त बॉस के बजाय एक मित्र और मार्गदर्शक (मेंटॉर) की भूमिका में आने के लिए प्रेरित करने की अत्यंत आवश्यकता है।

पीढ़ियों का अंतर : बुजुर्ग माता-पिता और कामकाजी बच्चों के बीच का संवाद लगभग समाप्त हो चुका है, जिससे वृद्धों में एकाकीपन बढ़ रहा है।

आज बचपन और युवावस्था दोनों ही सफलता की अंधी दौड़ और व्यावसायिक कोचिंग सेंटरों की भेंट चढ़ चुके हैं। माता-पिता बच्चों को इंसान बनाने के बजाय रैंक होल्डर मशीन बनाने में लगे हैं। इस दौड़ में माता-पिता और बच्चों का भावनात्मक जुड़ाव वस्तुनिष्ठ हो गया है।

निष्कर्ष: समग्र पारिवारिक विमर्श समय की माँग -माँ-बेटी कार्यक्रम निश्चित रूप से आधी आबादी के सशक्तीकरण के लिए एक उत्कृष्ट कदम है, लेकिन समाज का संतुलन केवल एक धुरी से नहीं सध सकता। परिवार एक जैविक इकाई है। यदि इसका एक भी सिरा कमजोर या संवादहीन रहेगा, तो सामाजिक प्रदूषण बढ़ता ही जाएगा।

आज आवश्यकता इस बात की है कि सरकार, सामाजिक संगठन और शिक्षण संस्थान केवल माँ-बेटी तक सीमित न रहकर पारिवारिक संवाद और मूल्य संवर्धन उत्सव आयोजित करें, जहाँ पिता, माता, पुत्र और पुत्री-सभी एक साथ बैठें। जब तक हम बेटा-बेटी एक समान के नारे को धरातल पर लाने के लिए पिताओं और बेटों को इस संवाद प्रक्रिया का हिस्सा नहीं बनाएंगे, तब तक एक स्वस्थ, संवेदनशील और सुरक्षित समाज की कल्पना अधूरी ही रहेगी।

–प्रोफेसर अशोक कुमार,
पूर्व कुलपति कानपुर,
गोरखपुर विश्वविद्यालय

बढ़ता शिक्षा बजट, घटता नामांकन : आखिर सरकारी विद्यालयों से मोहभंग क्यों?

राजेन्द्र जोशी

देश में शिक्षा को विकास की आधारशिला माना जाता है। केंद्र और राज्य सरकारें शिक्षा के विस्तार और गुणवत्ता सुधार के लिए हर वर्ष हजारों करोड़ रुपये खर्च कर रही हैं। विद्यालयों के भवनों का निर्माण हो रहा है, डिजिटल कक्षाएं विकसित की जा रही हैं, प्रयोगशालाएं और पुस्तकालय स्थापित किए जा रहे हैं तथा विद्यार्थियों के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाएं संचालित हैं। इसके बावजूद एक विडंबना लगातार सामने आ रही है- सरकारी विद्यालयों में नामांकन वर्ष-दर-वर्ष घटता जा रहा है। शिक्षा पर बढ़ते सरकारी व्यय और घटते नामांकन का यह विरोधाभास गंभीर चिंतन की मांग करता है।

कोरोना महामारी के दौरान एक समय ऐसा आया जब बड़ी संख्या में अभिभावकों ने आर्थिक कारणों से अपने बच्चों का प्रवेश सरकारी विद्यालयों में कराया। उस समय लगा कि शायद सरकारी शिक्षा व्यवस्था के प्रति समाज का विश्वास फिर से लौटेगा। किंतु जैसे ही परिस्थितियां सामान्य हुईं, निजी विद्यालयों की ओर पलायन पुन: शुरू हो गया। उसके बाद लगभग प्रत्येक शैक्षणिक सत्र में सरकारी विद्यालयों के नामांकन में गिरावट दर्ज की गई। यह स्थिति बताती है कि समस्या केवल आर्थिक नहीं, बल्कि विश्वास और गुणवत्ता की धारणा से भी जुड़ी हुई है।

सरकारी विद्यालयों में सुविधाओं का अभाव नहीं है। योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध हैं। कई विद्यालयों में स्मार्ट कक्षाएं, खेल सामग्री और आधुनिक संसाधन भी उपलब्ध हैं। यदि इन सबके बावजूद अभिभावक निजी विद्यालयों को प्राथमिकता दे रहे हैं, तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि केवल सुविधाएं पर्याप्त नहीं हैं; विश्वास अर्जित करना उससे भी अधिक आवश्यक है। आज समाज में यह धारणा गहराती जा रही है कि निजी विद्यालयों में पढ़ाई का स्तर बेहतर है, अनुशासन अधिक है और बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर अधिक ध्यान दिया जाता है। यह धारणा पूरी तरह सही हो या नहीं, लेकिन अभिभावकों के निर्णयों को प्रभावित अवश्य करती है। सरकारी विद्यालयों को इस मानसिकता को बदलने के लिए अपने परिणामों, शिक्षण की गुणवत्ता और नवाचारों के माध्यम से स्वयं को सिद्ध करना होगा।

एक और चिंताजनक पहलू यह है कि शिक्षा व्यवस्था सामाजिक विभाजन का माध्यम बनती जा रही है। आर्थिक रूप से सक्षम परिवार निजी विद्यालयों की ओर अग्रसर हैं, जबकि सरकारी विद्यालयों में मुख्यत: निम्न एवं मध्यम आय वर्ग के विद्यार्थी रह गए हैं। शिक्षा का उद्देश्य समाज को समान अवसर देना है, न कि आर्थिक आधार पर वर्गों में विभाजित करना। यदि यह प्रवृत्ति जारी रही, तो समान शिक्षा व्यवस्था का सपना अधूरा रह जाएगा।

ऐसे में यह प्रश्न स्वाभाविक है कि समाज का भरोसा सरकारी विद्यालयों पर क्यों कम हो रहा है? इस प्रश्न का उत्तर केवल सरकार को ही नहीं, बल्कि शिक्षा विभाग और शिक्षकों को भी आत्ममंथन के साथ तलाशना होगा। गुणवत्तापूर्ण शिक्षण, समय की पाबंदी, नवाचार, अभिभावकों से नियमित संवाद और विद्यालयों का जीवंत वातावरण ही इस विश्वास को पुनर्स्थापित कर सकते हैं। अब समय आ गया है कि सरकार केवल बजट बढ़ाने को उपलब्धि न माने, बल्कि प्रत्येक खर्च के परिणामों का भी ईमानदारी से मूल्यांकन करे। यह देखा जाए कि जिन क्षेत्रों में नामांकन लगातार घट रहा है, वहां वास्तविक कारण क्या हैं। स्थानीय स्तर पर समाधान विकसित किए जाएं और सफल सरकारी विद्यालयों के अनुभवों को व्यापक स्तर पर लागू किया जाए।

सरकारी विद्यालयों में पढ़ना किसी भी परिवार के लिए हीनता या सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी का विषय नहीं होना चाहिए। जब तक समाज की यह सोच नहीं बदलेगी, तब तक केवल योजनाएं और बजट अपेक्षित परिवर्तन नहीं ला पाएंगे। आवश्यकता ऐसी शिक्षा व्यवस्था की है जिस पर हर वर्